पर्यावरण संरक्षण एवं विकास :चुनौतियाँ और समाधान की दिशाए

Dr.Usha Devi,

Associate Professor,
Dept. History, V.H.P.G. College, Lucknow.

शोध सारांश

वास्तव में पर्यावरण प्रदूषण एक वैश्विक संकट है अतः इसका उपचार भी वैश्विक स्तर पर ही संभव है। अर्थात विश्व के सभी राष्ट्रों को मिलकर ही इस संदर्भ में कठोर निर्णय लेने होंगे। अमरीका और यूरोप के देशों में जिस विशाल स्तर पर औद्योगीकरण हुआ है उतना ही अधिक इन विकसित राष्ट्रों ने पर्यावरण को प्रदूषित किया है और कर रहे हैं। न्यायोचित बात तो यह है कि जिन राष्ट्रों ने पर्यावरण को जितना अधिक नुकसान पहुँचाया है। और उत्तरोत्तर पहुँचा रहे हैं वे इतनी ही अधिक इसकी जिम्मेदारी लें। परन्तु औद्योगिकीकरण के बलबूते पर विकसित अमरीका और योरप के देश अपनी धौंस दिखाकर विकासशील राष्ट्रों को भी समानरूप से जिम्मेदारी लेने का दबाव डाल कर इस मामले को टालते जा रहे हैं। आज हालत कितनी संकटपूर्ण बन गई है। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पर्यावरण विशेषज्ञ यह चेतावनी दे रहे हैं कि अगले कुछ दशकों में मानव का अस्तित्व ही समाप्त होने की संभावना है।

Kew Words: *पर्यावरणविद,औद्योगीकरण,पर्यावरण संरक्षण,विकास,वैश्विक संकट,*

पर्यावरण एक विश्वव्यापी व्यवस्था है जो पृथ्वी के दो ध्रुवों पर जमी बर्फ की मोटी परत (आइस कैप), समुद्रों से जल का वाष्पीकरण, वायुमंडल और सूर्य किरणों से निर्धारित होती है। पर्यावरण में तेजी से बढ़ते प्रदूषण से इन प्राकृतिक अवयकों के आपसी तालमेल में जो गड़बड़ी आई है उसका परिणाम हम विश्व के बढ़ते तापमान के रूप में भुगत रहे हैं। विश्व में तापमान का लेखा जोखा रखने की प्रथा सन् 1850 ई0 से प्रारंभ हुई। इसके अनुसार अधिकतर समाप्त हुए दशक अभी तक के उत्तरोत्तर सबसे गरम दशक होते जा रहे हैं।

पर्यावरण के साथ अत्याचार अंग्रेजी राज में औद्योगीकरण के साथ प्रारंभ हुआ। रेलवे लाइन बिछाने के लिए जंगलों की बेहिसाब कटाई की गई। औद्योगिक उत्पादन के लिए लगाए गए कारखानों से निकलने वाला धुआं वायुमंडल प्रदूषित करने लगा और उनसे निकलने वाला रसायन मिश्रित जल नदियों को गंदा करने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से औद्योगीकरण में और तेजी आई और आज यह हालत हो गई है कि जनता के बड़े हिस्से को सांस लेने के लिए शुद्ध वायु और पीने के लिए शुद्ध जल नसीब नहीं है।

पर्यावरणविदों का कहना है कि मानव खुद अपने कर्मों से अपना विनाश करेगा। इनका इशारा प्रकृति से छेड़छाड़ और ग्लोबल वार्मिंग की ओर है। यही बात सही लगती है, लेकिन इसमें कोई तारीख नियम नहीं है। जब पेड़ कटेंगे और पर्यावरण से खिलवाड़ होगा, तो ग्लेशियर पिघलेंगे ही। इससे पहले धरती पर बाढ़ आएगी और फिर नदियां सूखने पर अकाल पड़ेगा। वहीं समुद्र का जलस्तर बढ़ने से सुनामी खतरनाक रूप धारण

कर पहले किनारों के शहरों और द्वीपों को लीलेगी, फिर बाकी धरती को अपने आगोश में समेटेगी। लेकिन यह कोरोना काल में इतने शीघ्र को होगा, यह विश्वास के साथ भला कौन कह सकता है!

हालांकि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जनकों न्यूनतम करना विश्व के लिए बहुत महत्वपूर्ण लक्ष्य है, पर जिस तरह से इस कार्य को लोगों के सामने रखा जाता है, उस रूप में इसे विश्व के अधिसंख्य लोगों का भरपूर समर्थन नहीं मिल पाया हैं। वजह स्पष्ट है कि अधिकांश लोग अपने दैनिक जीवन के संघर्षों और बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में ही बुरी तरह उलझे हुए हैं तो फिर उनके लिए ग्रीन हाउस गैंसों के उत्सर्जनको कम करने जैसे लक्ष्य सबसे महत्वपूर्ण कैसे हो सकते हैं ? अतः जलवायु, बदलाव के असर को कम करने के प्रयासों को विश्व स्तर पर एक जन अभियान का रूप देना है तो हमें कुछ इस तरह की रणनीति अपनानी होगी, जिससे बड़े पैमाने पर जनसाधारण इस मुद्दे से इस हदतक जुड़ सकें कि वे अपनी–अपनी सरकारों पर एवं विश्व नेतृत्वपर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पर्याप्त दबाव बना पायें। जरूरत इस बात की है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जनको कम करने के लक्ष्य को विश्व के सब लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लक्ष्य से जोड़ा जाय। इस तरह की विश्व स्तर की योजना तैयार की जाय, जिसमें इन दो लक्ष्यों को विश्व के सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में मान्यता देते हुए उन्हें एक साथ प्राप्त करने का विस्तृत ब्यौरा तैयार किया जाय।

कोपेनहेनग में कुछ देशों ने वर्ष सन् 2020 ई0 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 40 फीसदी तक कमी करने की घोषणा की थी। यह अच्छा कदम था। इस दौरान चीन ने 40 फीसदी और भारत ने 20 से 25 फीसदी तक ग्रीन हाउस गैसों की कटौती की घोषणा की है। भारत ने यह कटौती अपने संसाधनों के दम पर करने की बात कही है, जो एक अच्छी बात है।

दरअसल अमीर देश वैज्ञानिकों और मीडिया के जरिये यह अफवाह फैला रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन से विकासशील देशों में जान–माल की ज्यादा हानि होगी। लेकिन ऐसा नही हैं। जब इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में फ्रांस में एक डिग्री तापमान बढ़ा, तो 10,000 लोग मारे गए। इसके बाद ही ग्लोबल वार्मिंग का मुद्दा गर्म हो गया। अमीर देश कह रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन से चीन और भारत जैसें देशों में बाढ़ आएगी और पैदावार कम हो जाएगी। पर एक रिपोर्ट बताती है कि चक्रवात,बाढ़ और सूखे के कारण 2025 से 2050 के बीच अमेरिका–यूरोप के कई शहर रहने लायक नहीं रह जाएंगे। पर इसे नजर अंदाज कर एशिया को धान की खेती छोड़ने के लिए कहा जा रहा हैं, क्योंकि ये किसान पृथ्वी का 97 फीसदी पानी सोख रहे हैं। एक किलो धान पैदा करने में बेतहाशा पानी खर्च होता है। धान के खेत मे मीथेन का उर्त्सजन भी होता है। लेकिन अमीर देशों को यह कौन बताएगा कि काफी की 10 मशीनें जितना मीथेन छोड़ती हैं, वह एक एकड़ धान की खेती के बराबर होता हैं ?

इन तमाम अड़चनों के बावजूद कोपेनहेगन से निराश न होकर उम्मीदें बन्धीं हैं। यह अभी एक कदम भर है। ऐसी कोशिशें

बार–बार करने की जरूरत हैं। हमें यह भी समझना होगा कि यह मामला सिर्फ ग्लोबल वार्मिंग के अधिकतम स्तर को दो डिग्री सेल्सियस के भीतर रखने तक ही सीमित नहीं है। संकट इससे कहीं बड़ा और गंभीर है। ये दो डिग्री सेल्सियस भी आने वाले कुछ वर्षों में तुवालु और मालदीव जैसे देशों का अस्तित्व खत्म कर देंगे। चूंकि धीरे–धीरे यह संकट हर किसी पर आने वाला है, इसलिए जलवायु परिवर्तन के खतरे को समझने और इसके समाधान के लिए राजनीतिक सिर–फुटव्वल की नहीं, बल्कि तथ्यपरक और तर्कसंगत चर्चा की जरूरत है। जलवायु परिवर्तन के प्रमाण सभी जगह उपलब्ध हैं। और ये परिवर्तन वृष्टिपात के रूप में सामने आ रहे हैं। विश्व के ऊपरी अक्षांशों में जहां इस वृष्टिपात की गति काफी तीव्र हैं, वही कुछ उप उष्णकटिबंधीय व उष्णकटिबंधीय इलाकों तथा भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में यह धीमी गति से हो रहा है। दरअसल, वृष्टिपात की तीव्र घटनाओं की संख्या न सिर्फ बढ़ रही है, बल्कि उनके विस्तार क्षेत्र में भी लगातार बढ़ोतरी हो रही है। इसके अलावा, लू के थपेड़ों बाढ और सूखे की सघनता एवं बारंबारता में भी वृद्धि हो रही है। जिस मात्रा और रूप में ये बदलाव वर्षा में दिख रहे हैं, अनेक आर्थिक गतिविधियों के लिए उसका गंभीर आशय है। साथ ही, भारी हिमपात या भयावह समुद्री बाढ़ जैसी आपात स्थिति से निपटने की सरकारी तैयारियों के लिहाज से भी इस परिवर्तन के गहरे निहितार्थ हैं।

जलवायु परिवर्तन की बहस इन दिनों केंद्र में है। भारत में धान पैदा करने के तरीके, पशुपालन और रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल को जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कारक बताए जा रहे हैं। और इन वजहों के साथ दुनिया के विशेषज्ञों एवं जलवायु परिवर्तन पर एक खास किस्म को वैश्विक समझ रखने वालों के निशाने पर भारत के गाँव हैं। इसे पांच हजार साल से भी अधिक की कृषि आधारित सामाजिक व्यवस्था को लांछित करने के साथ भारत की तरक्की में बाधा के तौर पर भी देखा जाना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के प्रतिशत के इर्द–गिर्द विशेषज्ञों की समझदारी धूमती हैं। भारत के लिए यहां सुकून की एक बात यह है कि दुनिया की 20.19 प्रतिशत आबादी वाला चीन जहां कार्बन उत्सर्जन के लिए 19.12 प्रतिशत जिम्मेदार है, वहीं दुनिया के सिर्फ 4.59 प्रतिशत लोग जिस अमेरिका में रहते हैं, वह कार्बन उत्सर्जन के मामले में दूसरे नम्बर पर है, यहां का प्रतिशत 18. 44 है। यूरोपीय संघ के 27 देशों में, जहां दुनिया की आबादी के महज 7.58 प्रतिशत लोग रहते हैं, कार्बन उत्सर्जन का प्रतिश 13.37 है। इसी तरह, रूसी परिसंघ के मुल्कों में दुनिया की 2.2 प्रतिशत आबादी निवास करती है, पर यहाँ कार्बन उत्सर्जन का प्रतिश 5.19 है। भारत इस तबाही तालिका में पांचवें स्थान पर आता है। यहाँ दुनिया की 16.94 प्रतिशत आबादी रहती है, जबकि कार्बन उत्सर्जन का प्रतिशत मात्र 4.91 है। इन आंकड़ों की रोशनी में यह तो तय हो गया कि भारत को गुनहगारों की कतार में खड़ा करने से पहले सौ बार सोचना चाहिए। भारत के पक्ष में खड़े लोगों को भी इस 4.91 प्रतिशत उत्सर्जन के मूल कारणों पर सोचना चाहिए।

मौसम में बदलाव अर्थात क्लाइमेट चेंज के बारे में यह माना जाता है कि यदि समय रहते इस संकट का समाधान नहीं ढूंढा गया, तो अगली आधी सदी से भी कम समय से इस ग्रह

पर समस्त प्राणियों का (वनस्पति समेत) जीवन समाप्त हो सकता है। हाल के वर्षों में सर्वनाशक प्राकृतिक आपदाओं में निरंतर वृद्धि चिंताजनक है और इसके अलावा धरती के तपने से जैव विविधता के लिए बड़ा जोखिम पैदा हो चुका है। फिर इसमें क्या अचरज कि जापानी शहर क्योटो में संपन्न जलवायु परिवर्तन परक परामर्श बेहद महत्वपूर्ण समझा गया। दूसरे शब्दों में भारत यह आशा नहीं कर सकता है कोपेनहेगन में अमेरिका और यूरोप के दबाव को झेलने के लिए कोई संयुक्त राजनयिक मोरचा भविष्य में बनेगा। हमें अपने बुनियादी हितों की रक्षा खुद और अकेले ही करनी होगी।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में भारत की जो हिस्सेदारी है, उसमें 28 प्रतिशत उत्सर्जन खेती के तौर–तरीकों के कारण होता है। धान की खेती के तौर–तरीकों, जमीन की प्रकृति में बदलाव और जानवरों के कारण 80 प्रतिशत मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड गैस उत्सर्जित होती है। देश के एक मात्र ग्लेशियरलाजी सेंटर और वाडिया इंस्टीटयूट आफ हिमालयन स्टडीज ने हिमालय के तीन ग्लेशियरों पर हुए शोध के आधार पर कहाँ है कि कुछ ग्लेशियरों के पिघलने की प्रक्रिया जारी हैं, लेकिन ऐसा ग्लोबल वार्मिंग के कारण नहीं, बल्कि स्थानीय मौसम में परिर्वतन के कारण हो रहा है। शोध के आधार पर पता चला है कि काराकोरम और सियाचिन जैसे ग्लेशियर बढ़ भी रहे हैं। इस संस्थान के अनुसार हिमालय के ग्लेशियरों का तापमान शून्य से 20–30 डिग्री सेल्सियस कम हैं, जबकि ग्लोबल वार्मिंग के अन्तर्गत पिछले साठ वर्षों में तापमान में दशमलव साठ डिग्री सेल्सियस की बढ़ोत्तरी हुई है। दरअसल आज हमने पर्यावरण और प्रदूषण पर बात करना एक फैशन बना लिया है। कुछ लोगों के लिए पर्यावरण जेबें भरने का साधन भी हैं। अब समय आ गया है कि हम सब खोखले आदर्शवाद से बाहर निकलकर पर्यावरण को बचाने के लिए गंभीर पहल करें।

पश्चिमी देशों को चिंता सता रही है कि आखिर इतनी अधिक बर्फबारी क्या मिनी हिमयुग की ओर ले जा रही है। उत्तरी ध्रुव पर बर्फ का गलन जारी है। समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। कई टापू पर बसे हुए देशों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। भारत में प्राणदायिनी गंगा के अस्तित्व पर भी सवाल उठ रहे हैं। तमाम ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। कई देशों में कुछ माह पहले हुई बरसात ने बाढ़ की जो विभीषिका पैदा की उसे अभी हम भूले नहीं हैं। कुल मिलाकर पूरब,पश्चिम,उत्तर,दक्षिण यानी जिसे मिलाकर एक शब्द पैदा हुआ था 'न्यूज' वही खबरों में हैं।

देश के एक मात्र ग्लेशियरलाजी सेंटर और वाडिया इंस्टीटयूट आफ हिमालयन स्टडीज ने हिमालय के तीन ग्लेशियरों पर हुए शोध के आधार पर कहा है कि कुछ ग्लेशियरों के पिघलने की प्रक्रिया जारी है, लेकिन ऐसा ग्लोबल वार्मिंग के कारण नहीं, बल्कि स्थानीय मौसम में परिर्वतन के कारण हो रहा है। शोध के आधार पर पता चला है कि काराकोरम और सियाचिन जैसे ग्लेशियर भी बढ़ रहे हैं। इस संस्थान के अनुसार हिमालय के ग्लेशियरों का तापमान शून्य से 20–30 डिग्री सेल्सियस कम हैं, जबकि ग्लोबल वार्मिंग के अन्तर्गत पिछले साठ वर्षों में तापमान में दशमलव साठ डिग्री सेल्सियस की बढ़ोत्तरी हुई है। दरअसल आज हमने पर्यावरण और प्रदूषण पर बात करना एक फैशन बना लिया है। कुछ लोगों के लिए पर्यावरण जेबें भरने का साधन भी हैं। अब समय आ गया है कि हम सब खोखले आदर्शवाद से बाहर निकलकर पर्यावरण को बचाने के लिए गंभीर पहल करें।

बढ़ते तापमान का घातक परिणाम है कि पृथ्वी के ध्रुवों पर लाखों साल से जमी बर्फ की परत तेजी से पिघल रही है और समुद्रों में जल का स्तर ऊपर उठ रहा है जिससे धरती के हिस्से डूबते जा रहे हैं। मालदीप जैसे अनेक देश

जो दो समुद्र के बीच टापुओं के समूह हैं, पूरे के पूरे डूब जाएंगे। हमारे स्थानीय संदर्भ में तापमान के बढ़ने का दुष्परिणाम है कि हिमालय के ग्लेशियर, गंगोत्री और यमुनोत्री, जो गंगा और यमुना को जन्म देते हैं, तेजी से पिघल रहे हैं। (प्रति वर्ष 20 मीटर की गति से) गंगा और यमुना प्रदूषित हो चुकी हैं। अब तो इनके सूखने का संकट हमें घूर रहा है। सोचिये क्या होगा उस विशाल जनता का जो गंगा और यमुना से जीवन यापन करती हैं।

बीमारियों का बिगड़ते पर्यावरण से गहरा नाता है। हमने प्रकृति को जिस हद तक बिगाड़ दिया है और तनाव के कारण शरीर की जैसी दुर्दशा कर डाली है, उसमें अब स्वस्थ रहना ही आश्चर्य से कम नहीं है। जल, वायु और मिट्टी प्रदूषण दुनिया भर में चालीस फीसदी मौतों के लिए जिम्मेदार हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट बताती है कि लगातार बढ़ती जनसंख्या और प्रतिकूल होते पर्यावरण ने पृथ्वी को एक ऐसी अस्वास्थ्यकर जगह में तबदील कर दिया हैं, जहां साधनहीन लोगों और देशों के लिए अपना अस्तित्व बचाए रखना मुश्किल हैं, क्योंकि ये कुपोषण का मुकाबला करने में सक्षम नहीं है। वर्ष सन् 1950 ई0 में वैश्विक आबादी का 20प्रतिशत कुपोषित था, आज दुनिया के 57 फीसदी लोगों को भरपेट भोजन नसीब नहीं होता। केबल इसी वजह से विश्व में हर साल साठ लाख बच्चें मारे जाते हैं और लाखों लोग श्वास संबंधी रोग और मलेरिया के शिकार बनते है। अस्सी फीसदी संक्रामक रोग जल प्रदूषण के कारण होते है।

एक नया अध्ययन तो खासकर विचारोत्तेजक है। तेल अबीव यूनिवर्सिटी के डाक्टर प्रोफेसर माइकल एथर्नफील्ड का कहना है कि कुछ खास इलाकों या चीजों का कुछ बीमारियों से सीधा रिश्ता होता है। जैसे कि हवाई अड्डों के नजदीक रहने वाले लोगों में रूमटॉइड आर्थराइटिस (गठिया) होने की आशंका ज्यादा होती है या मांस में मौजूद हॉर्मोन मनुष्य को कभी भी बीमार कर सकते हैं। उनके मुताबिक,पर्यावरण, संक्रमण,आनुवांशिकता और ऑटोइम्यून बीमारियों का आपस में संबंध है, हॉलांकि यह रिश्ता काफी जटिल और रहस्यमय है। ऑटोइम्यून बीमारियाँ दरअसल वे बीमारियां हैं, जिनमें शरीर का अति सक्रिय प्रतिरोधक तंत्र गफलत में अपनी ही कोशिकाओं पर हमला बोल देता है। यानी इस तरह की बीमारी हमारे स्वास्थ्य में कमी का परिणाम उतना नहीं है, जितना कि बदतर होते पर्यावरण का खामियाजा है! एर्थनफील्ड के मुताबिक,तमाम तरह के सूजन,थायरॉयड, ड्राई आई और लार ग्रंथि के सूख जाने के पीछे प्रतिकल पर्यावरण का हाथ होता है।

पर्यावरण से संबंधित दो अध्ययन हमारी धारणाओं को बदल देते हैं। अमेरिका की कोलंबिया और सिनसिनाटी यूनिवर्सिटियों में हुए हालिया शोध बताते हैं। कि पर्यावरण प्रदूषण अब नवजात शिशुओं तक को अपनी चपेट में ले रहा है! इसी तरह यह धारण भी अब कमोबेश खंडित हो गई है कि प्रदूषण घर के बाहर ही होता है। कोलंबिया यूनिवर्सिटी में हुआ पहला शोध बताता है कि घरों में तेल गरम करने की प्रक्रिया और डीजल के धुएं का उत्सर्जन बच्चों में सांस संबंधी तकलीफों के लिऐ जिम्मेदार है! इस अध्ययन में दो साल के बच्चों तक को शामिल किय गया इमें पाया गया कि खौलते तेल और वाहनों के धुएं के कारण हवा में जो निकेल और वैनेडियम घुलते हैं,

उनके कारण बच्चों को सांस लेने में तकलीफ होती है और उनका गला घरघराता रहता है। सिनसिनाटी यूनिवर्सिटी का शोध और भी भयभीत करने वाला है। यह अध्ययन तो घर के भीतर होने वाले प्रदूषण को भी छोटे बच्चों के लिए खतरनाक मानता है। इसके मुताबिक, यातायात से जुड़ा प्रदूषण और घर के अन्दर का प्रदूषण मिलकर छोटे बच्चों के विकसित होते फेफड़ों को सबसे ज्यादा क्षतिग्रस्त करता है।

वैसे भी,ताजा अध्ययनों से यह साफ हो गया है कि नाइट्रस ऑक्साइड से ओजोन परत को सर्वाधिक खतरा है। अगर ओजोन परत घटी, तो इसके कई दुष्परिणाम सामने आएंगे। सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर आएंगी, जिससे मनुष्यों को त्वचा रोग होगा, फसलें बरबाद होंगी और लोग कई गंभीर बीमारियों से ग्रसित होंगे।

मनोवैज्ञनिकों ने पता लगाया है कि शहर के माहौल में दिमाग पर दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है और उसे काफी क्षति पहुंच रही हैं। एक अध्ययन में देखा गया है कि शहर की किसी भीड़ भरी जगह से गुजरते समय चंद मिनटों के भीतर याददाश्त कम होने लगती है, जिस कारण आदमी आत्मनियंत्रण खोने लगता है।

पर्यावरण के प्रदूषण से आहत प्रकृति ने मौसम के चक्र को छिन्न–भिन्न करके आसन्न संकट का स्पष्ट संकेट दे दिया है। अपने देश ने ही अधिकांश क्षेत्र में सूखे के साथ–साथ कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और असम में भीषण बाढ़ की आपदा को देखा है। ऐसा ही दक्षिण–पूर्व एशिया, अफ्रीका योरप और दक्षिण अमरीका के अनेक देशों को झेलना पड़ा है। आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमरीका के विस्तृत वनक्षेत्र दावानल से भस्म हो गए हैं। इस प्रकार की आपदाओं में साल–दर साल तेजी से वृद्धि होती जा रही है।

विकास की इस दौड़ में कितने प्राणियों की प्रजातियों को हम समाप्त कर चुके हैं। कितनी प्रजातियां समाप्त होने के कगार पर हैं। रॉयल बंगाल टाइगर से लेकर गिद्ध तक पर इंसान की गिद्ध दृष्टि गड़ी हुई है। इसे बचाने के लिए चिंता भी होती है। पर सिर्फ बयानों और कागजों पर। कहने का अर्थ यह कि जब हम प्राणियों और पेड़ो की हत्या कर रहे हैं, तो हमें क्या मिलेगा ? हम जो कुछ प्रकृति के साथ कर रहे हैं, प्रकृति उसे चक्रवृद्धि ब्याज के साथ लौटाएगी उस जलजले से बचने के लिए अब भी समय है। हम सब मिलकर सुधर जाएं।

विज्ञान और विकास के इस युग में एक सवाल बार–बार मस्तिष्क को कचोट रहा है। आखिर जंगली कौन ? अब हम क्या कर रहे हैं ? चाँद पर पहुँच गए हैं, मंगल पर पानी और जीवन की तलाश कर रहे हैं। अंतरिक्ष में कॉलोनियां बनाने की योजनाएं बना रहे हैं। और धरती पर क्या बांट रहे हैं, मौत ?

हम प्राणवायु यानी ऑक्सीजन की हत्या कर रहे हैं। कार्बन डाईऑक्साइड सहित तमाम जहरीली गैसों से पर्यावरण को भर रहे हैं। क्या यही है विकास ? जिस देश ने पुराने कबीलों को मिटा डाला। जाने कितनी सभ्यताओं को रौंद डाला, वह आज सबसे सभ्य और विकसित होने का तमगा लिए बैठा है। दुनिया में सबसे अधिक जहरीली गैस छोड़कर पर्यावरण को बिगाड़ने का दोषी कौन है, इसके लिए दूर जाने की जरूरत नहीं है। दुनिया में हर साल 21.5 फीसदी कार्बन डाईऑक्साइड फैलाने वाले चीन, 20.2 प्रतिशत वाले अमेरिका और 13.8 फीसदी वाले पूरे यूरोपीय संघ को जानना होगा कि आबादी के लिहाज से भारत आज भी सबसे कम कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित करने वाले देशों में है।

भले ही हम धरती का तापमाप बढ़ाने के लिए अमेरिका जैसे देशों को दोषी ठहराएं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम बिल्कुल बेकुसूर हैं। हमारी सभ्यता भले ही प्रकृति को ईश्वर की तरह पूजती रही हो, इससे क्या फर्क

पड़ता हैं, जब हम आज प्रकृति पर अत्याचार करते जा रहे हों? औद्योगिक प्रदूषण पर केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय की रिपोर्ट सचमुच हमारी आंखे खोलने वाली है। रिपोर्ट कहती है कि भारत के लगभग 85 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण के मानकों का पालन करना तो दूर, उन्हें गंभीरता से लिया ही नहीं जाता। कुल 88 औद्योगिक शहरों का अध्ययन किया गया, जिनमें से 75 को बुरी तरह प्रदूषित पाया गया। एक तथ्य यह भी सामने आया है कि जहां–जहां बेतहाशा तरक्की हुई है, वहाँ– वहाँ पर्यावरण की अनदेखी की गई है। तो सवाल यह पैदा होता है कि क्या विकास और पर्यावरण एक–दूसरे के विरोधी हैं ? क्या पर्यावरण संरक्षण के साथ विकास संभव ही नहीं हैं ? यदि यह सच है, तो हम ऐसे विकास का क्या करें, जो हमारी भावी पीढ़ियों के लिए खायी खोद रहा हो। पर्यावरण धरती, जल और वायु की शुद्धता की अपेक्षा करता है। हम इन तीनों ही कसौटियों पर खरे नहीं उतर रहे हैं। हम अपनी धरती को लगातार उजाड़ रहे हैं। हरे–भरे जंगलों की जगह कंक्रीट के जंगल उग रहे हैं। जल की सबसे बड़ी स्रोत हमारी सदानीरा या तो सूख रही हैं, या फिर उनमें बहता पानी इतना गंदला हो गया है कि वह पीना तो दूर, नहाने लायक भी नहीं रहा। इसी तरह, हम जिस हवा को प्राणवायु कहते हैं, वह लगातार विषाक्त हो रही है। दरअसल यह रिपोर्ट इन तीनों ही पहलुओं की ओर हमार ध्यान आकर्षित करती है। हमारे औद्योगिक शहर न धरती का ध्यान रख रहे हैं और न जल एवं आकाश का जिन औद्योगिक शहरों के पास से नदियाँ गुजरती हैं, वहाँ वे औद्योगिक कचरे के विजर्सजन का सबसे बड़ा ठिकाना हैं। इसी तरह, इन शहरों की हवा सांस लेने लायक नहीं बची। दुर्भाग्य यह है कि राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पांच ऐसे क्षेत्र हैं, जो देश के सबसे प्रदूषित शहरों में शामिल हैं। गुजरात में अंकलेश्वर और वापी के बाद उत्तर प्रदेश का गाजियाबाद सबसे प्रदूषित शहरों में है। दिल्ली,नोएडा,फरीदाबाद और सिंगरौली भी पीछे नहीं है। इससे पहले आई रिपोर्ट बताती हैं कि उत्तर भारत का लगभग हर औद्योगिक शहर प्रदूषण फैला रहा हे। पंजाब में लुधियाना,जालंधर, गोविन्दगढ़,उत्तर प्रदेश के लखनऊ, कानपुर, आगरा, वाराणसी, गजरौला और उत्तराखंड का देहरादून जैसे शहर भी पर्यावरण मानकों की अवहेलना कर रहे हैं। इस तरह पर्यावरण की अनदेखी करके भले ही हम आज तरक्की कर ले रहे हों, लेकिन वास्तव में अपने भविष्य को ही अंधकारमय बना रहे है।

बढ़ते शहरीकरण का मानव स्वास्थ्य पर कितना प्रतिकूल असर पड़ा है, यह जानने के लिए विशेषज्ञ होना जरूरी नहीं है। चौबीसों घंटे शोर, वाहनों के धुएं और प्रदूषित पानी के कारण कसबाई और शहरी आबादी में दिल, फेफड़े, किडनी आदि से संबंधित बीमारियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। प्रदूषण के कारण कैंसर का खतरे पहले के मुकाबले अधिक भयावह हो गया है।

अध्ययन बताते हैं कि शहरों–कस्बों से घिरे गाँव में भी प्रदूषण कम नहीं हैं। जल प्रदूषण तेजी से फैलाता है। लिहाजा गांवों में भूमिगत जल से सीधे इस्तेमाल की आदत शहरों की तुलना में कही खतरनाक हैं, जहां पेयजल को कमोबेश शुद्ध करके प्रयोग में लाया जाता है। लेकिन मुद्दा शहर और गांवों में पर्यावरण के फर्क का नहीं है। मुद्दा प्रदूषण की भयावहता का है। अब तक धारणा यह रही है कि पर्यावरण प्रदूषण का शिकार खासकर वैसे लोग होते हैं, जिन्हें कामकाज के सिलसिलें में बाहर जाना पड़ता हैं, इसलिए पर्यावरण प्रदूषण का असर भी उन पर कम ही पड़ता है। एक हद तक यह सच भी है।

ऐसे भयानक संकट से निपटने के लिए क्या किया जाए ? उत्तर स्पष्ट है। नदियों के प्रदूषण को रोकने के लिए कारगर कदम उठाने के साथ–साथ हमें ऊर्जा उत्पादन के वैकल्पिक

साधनों का विस्तार करना होगा। सूर्य किरणों और वायु से विद्युत उत्पादन के तरीकों की खोज कर ली गई है और इनके पर्यावरण का प्रदूषण भी नहीं होता है फिर भी आज तक विद्युत उत्पादन के इन वैकल्पिक साधनों में भारत की क्षमता का सिर्फ 6 प्रतिशत ही कार्यान्वित किया गया। शेष विश्व में भी हालत कुछ ऐसी ही है।

हम कालिदास बनकर जीवनदायिनी प्रकृति का विनाश कर रहे हैं, अब पर्यावरण प्रदूषण रूपी राक्षस से लड़ने का समय आ गया है। यह प्रदूषण हम पर हावी होकर हमारा जीवन कष्टमय ही नहीं समाप्त करने पर तुला हुआ है। धरती में से आग के गोले निकलने प्रारम्भ हो गये हैं इसके साथ ही हवा में आक्सीजन की मात्रा कम होने के साथ–साथ विषाक्त होती जा रही है। हे धरती पुत्रो जागो, हमारी पूज्यनीय धरती माँ के सीने की आग भूकम्प या ज्वाली मुखी बनकर निकले इसके पूर्व ही हमें भावी पीढ़ी की सुरक्षा हेतु अपना कर्तव्य निभाना है। वृक्षारोपण एवं वृक्षपालन हमारा आध्यात्मिक एवं समाजिक आंदोलन है और इसको सफल बनाना हमारा नैतिक दायित्व है।

निःसन्देह आज का यह दौर कठिन एवं चुनौतीपूर्ण है किन्तु संघर्ष ही तो जीवन है। फिर समाधान क्या हो सकते हैं? किन्तु अक्सर समाधान हमारे दूसरों को सम्बोधित होते हैं और चूँकि हर कोई यही चाहता है कि प्रारम्भ इसका दूसरा करे। आखिर हम सदैव समाधान से दूर क्यों रहते हैं लेकिन मेरी अपनी मान्यता है कि जो गिने–चुने लोग स्वार्थ रहित मानव सभ्यता के विकास के लिए पहल का प्रयास करते हैं उन्हें सफलता अवश्य मिलती है यह बात दीगर है कि पूरे वातावरण में भले ही उसका प्रभाव दिखाई न देता हो किन्तु प्रयास छोड़ना इसका विकल्प नहीं है। बस आवश्यकता है इसके प्रति एक छोटी पहल करने के प्रयास की। आखिर एक बड़ा वृक्ष छोटे बीज से, बड़ा भवन एक ईंट से तथा लम्बी यात्रा एक कदम से ही प्रारम्भ होती है।

संदर्भ सूची

1. सिंह, रवीन्द्र (2001) पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. नेगी,पी0 एस0 (200) पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
3. डब्लू सी0वाल्टन (1970) ग्राउण्ड वाटर रिसोर्स इवेल्यूशन, एम0पी0 ग्रोव हील, न्यूयार्क,
4. सिंह डा0 काशीनाथ सिंह, डा0 जगदीश सिंह (1997) आर्थिक भूगोल के मूल तत्व।
5. मिश्र,डा0डी0के (2004) जनसंख्या, पर्यारण एवं विकास,ए0पी0एच0 पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली।
6. मौर्य एस0डी0 (2006) संसाधन एवं पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. कुरुक्षेत्र, मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2011।
8. योजना, मासिक पत्रिका, अगस्त 2011।
9. विज्ञान प्रगति, मासिक पत्रिका, जून 2012।
10. चंदोला राजेश्वरी प्रसाद, पर्यावरणः आज धरती रोती है –आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006
11. गौतम डॉ0 विद्यापति, विश्व संकट ग्लोबल वार्मिंग, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006